बीच मीडिया के बड़े हिस्से का देश की जनता की वास्तविकता से सम्पर्क टूट गया है, जो खतरनाक है। (बेन बेग्डिकियान, द मीडिया मोनोपोली, 1983)[48] संदेश की व्याख्या का जिक्र करते हुए विष्णु राजगढ़िया का कहना है— हाइपोडरमिक नीडल का तात्पर्य किसी रणनीति व योजना के तहत लक्षित समूह तक सीधे संदेश पहुंचाकर उस पर मनचाहा प्रभाव उत्पन्न करने के प्रयास से है। इसमें श्रोता द्वारा संदेश की स्वयं व्याख्या की संभावना की पूरी तरह उपेक्षा की गयी है, जबकि यह संचार की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण पहलू है।[49] डॉ. शिवनारायण ने इस बारे में स्पष्ट धारणा पेश करते हुए उल्लेख किया है कि सम्पादक का प्रभाव स्पष्ट होता है, जो लोक जीवन को गतिशील बनाता है। यथा : पत्रकारिता के माध्यम से संपादक लोक-जीवन को जाग्रत और गतिशील बनाता है, प्रशिक्षित और सुसंस्कृत करता है, लोकतांत्रिक एवं मानवीय मूल्यों की स्वीकृति एवं अंगीकृति की प्रेरणा प्रदान करता है।[50]

48 मण्डल दिलीप, मीडिया का अण्डरवर्ल्ड, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2011, नयी दिल्ली, पृ. 17

49 राजगढ़िया विष्णु, जनसंचार : सिद्धांत और अनुप्रयोग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2008, पृ. 49

50 डॉ. शिवनारायण, काश्यप डॉ. सिद्धेश्वर, हिन्दी पत्रकारिता का समकालीन विमर्श, नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2008, पृ. 33

लोकतांत्रिक प्रक्रिया के सपने

लोकतंत्र प्रक्रिया के सपने क्या मीडिया के जरिये पूरे होते हैं? कौन इस प्रश्न का जवाब देगा, पर यह सच है कि मीडिया कठोर से कठोर कर्म के जरिये पूरे समाज में मधुर से मधुर स्वप्न को प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। ऐसा महसूस होता है कि उसने काल से होड़ शुरू कर दी है। महान कवि शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में :— काल/ तुझसे होड़ है मेरी : अपराजित तू—/ तुझमें अपराजित मैं वास करूं।

उल्लेखनीय है कि वर्तमान समय में मीडियामैन के अधिकारों को न केवल व्याप्त करने के लिए पहल करने की जरूरत है, बल्कि उनके अधिकारों को बचाने की आवश्यकता भी है। समाज में मीडियामैन के अधिकारों को और सुरक्षित करने की दिशा में सरकार आगे नहीं बढ़ती है। उल्टे सरकार मीडियामैन के अधिकारों और उनकी सुविधाओं की कांटछांट शुरू कर देती है। ऐसी स्थिति में समाज को गतिशील बनाने के लिए आन्दोलन पैदा करने के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

आन्दोलन समाज को जाग्रत बनाता है। इस जाग्रत स्थिति में समाज को नयी दिशा मिलती है। मीडिया समाज को यह दिशा दे रहा है, जो शासक

Scanned with CamScanner

वर्ग के विपरीत है। यही कारण है कि कभी-कभी बेवजह मीडिया और शासक-वर्ग आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। सिर्फ खड़े होने की समस्या नहीं है, बल्कि उन दोनों के बीच असंतुलन पैदा हो जाता है।

इस असंतुलन को संतुलित करने का प्रयास भी मीडियामैन के जरिये होता है। इसलिए कि मीडियामैन जनतंत्र को बचाने के लिए आदि से अंत तक प्रयास करते हैं। जनता जो चाहती है, उसको पूरा करने के लिए मीडियामैन अपने स्तर तक पूरी कोशिश करते हैं। सिर्फ अनैतिकता-नीतिहीनता के आईने में मीडियामैन को देखना अनुचित है। यह एक गैर-जनतांत्रिक प्रक्रिया है। क्या समाज के बड़े-बड़े अर्थवानों-समृद्धवानों को हर चीज तय करने का मौका देना चाहिए। जिसने मीडिया को कोसों दूर से देखने का प्रयास किया है, उसके लिए मीडिया पर फतवा देना किस कोने से शोभा देता है। गरीब किसानों को मरते देखकर जिसने हमेशा अट्टहास लगाया है, वह भला क्या मीडिया से किसानों की खुदकुशी पर आंसू बहाने की उम्मीद करेगा?

यह उम्मीद एक नौटंकी है, जिसे देखकर कुछ लोग कहेंगे कि सरकारी स्तर पर किसानों की खुदकुशी पर आंसू बहाये गये। जो व्यक्ति आंसू बहाने पर वक्रोन करते हैं, उन्हें सेंसेक्स के लुढ़कने पर वित्तमंत्री की डबडबायी आंखें नजर आती हैं। यही आंखें उन्हें पसंद हैं। किसानों की मौत पर संवेदना प्रकट करना उन्हें मालूम नहीं है। किसानों की मौत पर ऐसे व्यक्ति कहते हैं कि किसानों ने कर्ज क्यों लिया? उनकी नजर में धनवानों द्वारा कर्ज लेना उचित है तथा किसानों द्वारा कर्ज लेना अनुचित है। जब शासक वर्ग का स्वार्थ सिर पर चढ़ जाता है, तब उसके पक्ष में चारों तरफ से भोंपू बजने लगते हैं।

बजानेवालों की भीड़ भी उमड़ आती है। लेकिन धीरे-धीरे आवाज बंद हो जाती है और भीड़ खाली हो जाती है। मीडिया दोनों दृश्यों को लेकर समाज के बीच दौड़ता है। देखनेवाले चाहे जो देखें भरी भीड़ या खाली भीड़।

इसी भीड़ को दिखाने के चक्कर में तरह-तरह की बहसें शुरू हो जाती हैं। यदि बहस शुरू होगी तो उसके दो खेमे अपने-अपने अस्तित्व में आयेंगे। उन दोनों खेमों की अपनी-अपनी विशेषता होगी। विशेषता निश्चित तौर पर आकर्षक होगी, लेकिन वह आकर्षण चिरस्थायी नहीं होगा। आकर्षण को स्थायी बनाने के लिए राजनीतिक-सामाजिक स्थिरता कायम करना आवश्यक है। इस कार्य को भी मीडियामैन ही अंतिम रूप देते हैं। श्रमजीवी वर्ग से सीधे-सीधे मीडियामैन बाहर निकलकर आते हैं। इसलिए खाये-पीये अघाये लोग मीडियामैन के कार्यों को पसंद नहीं करते हैं। ऐसे लोगों की कथनी करनी में फर्क होता है। उनके कहने का अंदाज अलग होता है। उस अंदाज के तहत मीडिया को अब नीतियां बदलने का संघर्ष आरंभ करना होगा, तभी जाकर मीडिया समाज को बदल सकता है। जो व्यक्ति समाज में मीडिया को नेतृत्वकारी भूमिका के रूप में देखना चाहते हैं, उन्हें मालूम हो कि दो-तीन व्यक्तियों की इच्छाओं के अनुसार समाज का परिवर्तन नहीं होता है।

समाज अपने बदलाव के लिए सही समय पर तैयार होता है, तभी उसके अंतर्गत एक व्यवस्था जन्म लेती है। उस व्यवस्था के जन्म लेने के साथ-साथ उसके अंत होने की कहानी भी शुरू हो जाती है। उन्हीं दोनों के द्वंद्वात्मक संघर्ष पर किसी रचनाकार का ध्यान होता है, तभी वह रचनाकार प्रेमचंद या शरत्चंद बन सकता है। वास्तविक परिस्थितियों को समझने के

Scanned with CamScanner

नाम पर घड़ियाली आंसू बहाने से कोई प्रेमचंद नहीं बन जाता है बल्कि उन वास्तविक परिस्थितियों में सटीक और सही हस्तक्षेप करने वाला रचनाकार ही प्रेमचंद बन सकता है।

इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट होगा कि प्रेमचंद ने समाज में जो भूमिका अदा की थी, वह भूमिका मीडिया आज नहीं कर सकता है। इसके कई कारण हैं। मीडिया आज उत्प्रेरक का काम कर रहा है, जबकि कोई रचनाकार अपनी रचना दृष्टि और रचनाशीलता के जरिये समाज के हर क्षेत्र में एक विकल्प प्रस्तुत करता है। रचनाकार को अपने विकल्प को कार्यांवित करने के सिलसिले में राजस्व की उगाही की चिंता नहीं होती है, जबकि मीडिया हर वक्त इसी चिंता में रहता है कि उसकी राजस्व-उगाही ठीक-ठाक ही नहीं बल्कि दनादन चल रही है या नहीं। कहने का अभिप्राय यही है कि वस्तुस्थिति को अपनी इच्छा के अनुरूप बदलने से कोई लाभ होने वाला नहीं है।

परिस्थितियों को समझना चाहिए तथा उसके संतुलन को बदलना एक महत्वपूर्ण कार्य है, जो सामाजिक स्थितियों की वास्तविकता के अनुसार ही सम्पन्न होता है। यहां भी एक दृष्टि पर ध्यान रखने की आवश्यकता है, जहां शासक वर्ग अपने विरुद्ध होनेवाली हर कार्रवाई को अपने पक्ष में मोड़ने का प्रयास करता है। यदि इस कार्य में उसे सफलता मिल जाती है, तो बदलाव की घड़ी बढ़ जाती है। इस घड़ी में थोड़े उपदेश देने से बदलाव की प्रक्रिया मंद हो जाती है। यह बात वही समझ सकते हैं,जो काल की गति और उसकी प्रकृति का अध्ययन-मनन करते हैं। इस सच को जाने बिना बहसबाजी में हिस्सा लेना बेकार है। यदि बहस मानव उत्थान को आगे नहीं बढ़ाती है, तो उसकी प्रयोजनीयता बेकार साबित हो जाती है।

यही कारण है कि तरह तरह के आरोप प्रत्यारोप शुरू हो जाते हैं। इस दौर से न केवल समाज को बचाना चाहिए बल्कि मीडिया को भी बचाना जरूरी है। तभी जाकर सार्थक बहस शुरू हो सकती है। लेकिन मीडिया को बहस में न फंसाकर उसी काम करने का मौका देना उचित है। यह काम मीडियामैन ही कर सकते हैं। एक साथ मीडियामैन को दोहरी भूमिका अदा करनी पड़ती है, एक ओर मीडिया को लोकप्रिय बनाने के लिए नये नये विषयों को उठाना पड़ता है, ठीक दूसरी ओर अलोकप्रिय अलोकतांत्रिक प्रक्रिया के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ती है। यह एक कठिन काम है।

मीडियामैन इस कठिन काम को बड़ी सहजता और सरलता के साथ अंजाम देते हैं जबकि बहसबाज मीडिया को उलझाना चाहते हैं। इससे मीडियामैन परिचित होते हैं। इस उलझन की काट प्रस्तुत करने में मीडियामैन प्रचार की धार को तेज कर देते हैं। देखते देखते बहसबाज खलनायक की भूमिका में आ जाते हैं और इस लड़ाई में मीडिया को ही लाभ होता है, क्योंकि वह हर परिस्थिति में एक अनुशासित छात्र की तरह सिर्फ सीखना चाहता है। इस सीखने के चलते मीडिया बाजी मार लेता है और बाकी सभी हारे बजारे नजर आते हैं।

इसके बावजूद एक बिम्ब बनता है, जिसे मीडिया आगे लेकर बढ़ता है। शमशेर की इन पंक्तियों में इस बिम्ब का आभास एक तरह से हो सकता है— एक खुशबू, जो मेरी पलकों में इशारों की तरह बस गई है, जैसे तुम्हारे नाम की नन्हीं सी/ स्पेलिंग हो, छोटी सी, प्यारी सी, तिरछी स्पेलिंग। नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ!

■ जरूरी है नैतिकता

भारतीय मीडिया ने भ्रष्टाचार का मसला उठाया है। चारों तरफ हल्ला हो रहा है कि भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन तेज हो गया है। शिक्षक भी अपने छात्र-छात्राओं के साथ भ्रष्टाचार निरोधक आंदोलन में शामिल होते हैं। खुशी की बात है कि भारत में दो-तीन पीढ़ियां एक साथ मिलकर भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठा रही हैं। यह सच है कि प्रतिरोध से ही रास्ता निकलता है। जिस समाज में प्रतिवाद नहीं होगा, वह समाज भीतर ही भीतर कुंद हो जायेगा जबकि जरूरी है उसे कुंदन बनाने की। कहने का अभिप्राय यही है कि पूरी तैयारी के साथ भ्रष्टाचार का विरोध नहीं हो पा रहा है।

भ्रष्टाचार किन कारणों के चलते हो रहा है; उन कारणों को पकड़ने की भी बात नहीं उठ रही है। परोक्ष रूप से यह कहा जा रहा है कि वैश्वीकरण की नीति को जब तक नहीं रोका जायेगा तब तक भ्रष्टाचार का भी मुकाबला नहीं किया जा सकता। सवाल यह है कि भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन चलाने से भ्रष्टाचार क्या बंद होगा, मीडिया में भी यह चर्चा का विषय है। पक्ष-प्रतिपक्ष या दोनों पक्ष भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की परिधि को फैलाने के पक्षधर हैं। इसके बावजूद भारत में भ्रष्टाचार का विकास ही हुआ है। उस पर अंकुश नहीं लगा।

एक साल पहले भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन उस तरह नहीं था, जिस तरह यह आंदोलन आज है। जब भारत में भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन शुरू होने वाला था, तब पूरी दुनिया में भ्रष्ट देशों-की सूची में भारत का स्थान 87 वां था और जब भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन तेज हुआ, तब उसका स्थान

95 वां हो गया। बात-बात में यह कहा जाता कि नौकरशाही जड़ता और राजनीतिक अकर्मण्यता के चलते भ्रष्टाचार होता रहा है। इस जड़ता और अकर्मण्यता को तोड़ने से भ्रष्टाचार का निजाम दरक उठेगा। भ्रष्टाचार के निदान के लिए देशीय दवा भी दी जा रही है। लेकिन यह लाइलाज बीमारी है। जब अंग्रेजी दवा से रोग ठीक नहीं हो रहा है, तब देसी जड़ी-बूटी खिलाना पड़ रहा है। अनुभवी वैद्यों का कहना है कि भ्रष्टाचार न देसी दवा से दूर होगा और न विदेशी दवा से। इसका निदान अवस्था व व्यवस्था के निदान के साथ ही होगा। मीडिया में इसकी चर्चा है।

अंतर्राष्ट्रीय मीडिया ने भारत के भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन को कवरेज देने के साथ-साथ यह भी कहा कि न्यायपालिका-विधायिका-कार्यपालिका में किस तरह भ्रष्टाचार ने अपनी जड़ जमा ली है। ऐसा दिखाया जा रहा है कि भ्रष्टाचार की जड़ काटने का सीधा अर्थ है व्यवस्था की जड़ काटना। धीरे-धीरे भ्रष्टाचार ने भयावह रूप धारण कर लिया है। जिस तरह सड़क पार करते लोगों से पैसा लेना पुलिस अपना पावन कर्तव्य समझती है, ठीक उसी तरह राजनेता अपने चुनाव में किन्हीं खास व्यक्तियों या संस्थाओं द्वारा पैसा लेना अपनी देशभक्ति समझता है। यह रवैय्या धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है।

किताबें भी छप रही हैं और सलाहकार सलाह भी दे रहे हैं— किस तरह गलत काम करें और कानून की नजर से कैसे बचें। ऐसे सलाहकारों को नुक्कड़ों पर सदाचार के पक्ष में भाषण देते देखा जाता है। सिर्फ इतना ही नहीं भ्रष्टाचार के विरुद्ध मोमबत्ती जलाने में वे सदाचारी सबसे आगे रहते हैं। मीडिया इन सदाचारियों का पक्ष नहीं लेगा, तो किसका पक्ष लेगा? और

Scanned with CamScanner

जब मीडिया इसके संबंध में मुंह खोलता है, तब मीडिया पर हल्ला बोल दिया जाता है। वह अपनी जान बचाने के लिए समाज के विभिन्न स्तरों के लोगों को लाकर सामने बैठाता है। विचारों का आदान प्रदान होता है। निष्कर्ष के नाम पर यही बताया जाता कि समय के अभाव में आज बहस यहीं तक।

आखिर कभी तो समय आयेगा जब कोई निदान मिलेगा। बकवास और बहस के अंतर को समझाने की आवश्यकता है, बकवास के जरिये एक दर्शक को ग्राहक बनाया जा सकता है, लेकिन बहस के जरिये दर्शक का मुकम्मल दर्शक के रूप में रूपांतर किया जाता है। बहस के जरिये माल की बिक्री नहीं बढ़ती है, लेकिन बकवास के जरिये माल की बिक्री बढ़ जाती है। जनता को बहस से अलग-थलग करने के लिए तरह-तरह के उपाय किए जाते हैं ताकि जनता जाग्रत न हो सके। ऐसी स्थिति में आंकड़ों से पुष्ट आलेख देने की बात की जाती है। तथ्य और कल्पना के बीच संघर्ष कराया जाता है। कहानी को ताजा बनाने के लिए कल्पना का पुट दिया जाता है और कहानी को विकृत करने के लिए बेवजह तथ्य को तोड़ा-मरोड़ा जाता है, तथ्य को तोड़ने से जनता के मुद्दों को दरकिनार करने में सुविधा होती है।

उल्लेखनीय है कि राजनीतिज्ञों के लिए जनता सिर्फ मतदाता है। मतदाता को कब एक नागरिक का दर्जा मिलेगा। यह सवाल उन राजनीतिज्ञों के लिए मायने नहीं रखता है। यही कारण है कि मीडिया को भी मानदंड के दायरे में रखने की बात की जाती है। मीडिया को सदाचारी बनाने का उपदेश दिया जाता है हालांकि मीडिया को न सदाचार से लेना देना है और न भ्रष्टाचार से। इसे एक मुद्दे को तभी तलक जिंदा रखना है, जब तक उससे राजस्व मिलता रहे।

इस राजस्व की कमाई आधे से अधिक भ्रष्ट कार्यों में खपती है। कहने के लिए चाहे भ्रष्टाचार का मुद्दा हो या सदाचार का; इन दोनों में से किसी एक को खत्म करना नामुमकिन है। सदाचार का वृक्ष धीरे-धीरे अपने आप सूखता चला जाता है। इस वृक्ष में पानी देने वालों की संख्या भी आज लगातार घटती जा रही है। जब तक नीति नैतिकता की बात नहीं की जायेगी या उसे स्थापित नहीं किया जायेगा, तब तक राजनीतिक परिमंडल को बदलना मुश्किल है। भारत के राजनीतिक परिमंडल पर विदेशी बहुर्राष्ट्रीय कम्पनियों ने कब्जा जमा लिया है। उसे बदलना मुश्किल है। वैसे देश और देशवासी चाहेंगे तो इस परिमंडल को बदलकर देश के नब्बे प्रतिशत के हित की रक्षा कर सकेंगे। भ्रष्टाचारी भी भ्रष्टचार के विरुद्ध बिगुल बजा रहे हैं। इसके पीछे उनका स्वार्थ है।

इस बिगुल की आवाज सबको आकृष्ट नहीं कर पा रही है। इसमें कहाँ गलती है-बिगुल में या आवाज में। गलती चाहे जिसमें हो लेकिन सच तो यही है कि आवाज किसी को आकृष्ट नहीं कर पा रही है। इस बीच भ्रष्टाचारियों की जय-जय होने लगती है। मीडिया इस सच का पर्दाफाश करता है, जिसके चलते मीडियामैन को कभी-कभी ऐसी दुनिया में कदम रखना पड़ता है, जिसे देखकर कोई बड़ी चालाकी से कह बैठता है कि मीडिया के चलते ही सारी समस्याएं हैं, जबकि मीडिया हर समस्या की तह में जाकर सच रूपी रत्न को खोज निकालता है, कोई चाहे तो रत्न को अपनी अंगूठी में जड़े या अपने मुकुट में। उसे सदाचारी या भ्रष्टाचारी बनने की जरूरत नहीं है।

जब-जब भ्रष्टाचार और सदाचार का सवाल उठेगा, तब-तब मीडिया हमेशा और नैतिकता को उठाता रहेगा। साथ ही हक की लड़ाई जारी रहेगी।

Scanned with CamScanner

इस लड़ाई के आईने में भ्रष्टाचार को एक बार के लिए जरूर देखा जायेगा, आज नहीं तो कल और अधिक देरी हुई तो परसों। इसलिए कि सदाचार की रोशनी में भ्रष्टाचार उसी तरह लुप्त हो जाता है, जिस तरह रोशनी में अंधेरा।

■ बेलाग संदर्भ

वर्तमान समय लाचार है। उसका संदर्भ भी कोहरे का शिकार होनेवाला है। किसी व्यक्ति में इतनी ताकत कहां दिखती है, जो उसके समय और संदर्भ को बचाये। चारों तरफ हाहाकार है। अपनी थाली में दाल नहीं देखकर दूसरे की थाली की दाल में नमक खोजनेवालों की संख्या समाज में चाहे जितनी अधिक हो, सच्चाई तो यही है कि रोटी-दाल की समस्या ने सबको वर्तमान समय में मजबूर बना दिया है। क्या मीडिया इससे टकराता है ?

सही अर्थों में देखा जाय तो मीडिया हमेशा इस समस्या को दबी जुबान से उठाता है। यह मीडिया का विकासमान रूप है। इसका जीता-जागता रूप विकसित देशों में देखा जाता है और उस रूप का प्रभाव विकासमान देशों में दिखता है।

इस छवि को स्थापित करने के लिए मीडिया अपने कार्यों को कई हिस्सों में विभाजित करता है तथा हर मुकाम पर मुकम्मल होने का सपना देखता है। इस सपने को कारगर बनाने के सिलसिले में समाज के मिथकीय भ्रम को तोड़ता है। एक ऐसी संरचना पेश करता है ताकि विश्लेषण की भावभूमि पर समाज अपने पूरे स्वरूप को स्थापित कर पाये। इसके लिए मीडिया को अधिकतर सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है।

कभी इस खेल में उसे कामयाबी मिलती है। कभी इस खेल में वह पूरी तरह व्यर्थ सिद्ध होता है। अपनी कामयाबी का मूल्यांकन मीडिया दर्शक-पाठक, राजस्व, प्रस्तुति इत्यादि के मानदण्ड पर करता है, जबकि अपनी व्यर्थता का आकलन सिर्फ आर्थिक घाटे के आधार पर करता है।

मीडिया अपनी चमक की यथास्थिति को बदलता है। इसे परिवर्तित किये बिना वह चल नहीं पाता। इसलिए वह सबसे पहले अपने भाषाई तेवर को बदलता है। इस तेवर में मीडिया भाषा और बोली में फर्क नहीं करता बल्कि उसके लिए विदेशी भाषा एक तरह से विदेशी शब्द की तरह होती है। उसका प्रयोग करने में उसे कोई दिक्कत नहीं है। मीडिया की भाषा है, यह कहा जा सकता है। एक हद तक यह सच है। जिस भाषा में आलोचना लिखी जाती है या भक्ति काव्य का विश्लेषण किया जाता है, उस भाषा में चाहे जो हो खबर नहीं लिखी जाती है।

मीडिया ने जब से अपनी चमक पैदा करना शुरू किया है, उसी दिन से मीडिया ने यह ऐलान कर दिया कि अब खबर लिखी नहीं जायेगी बल्कि खबर बनायी जायेगी।

चमक के ज्ञान के अभाव में खबर नहीं बनायी जा सकती है और जब खबर बनने की बात उठती है, वहां तर्क से काम नहीं चलता है। तर्क में चाहे जितनी ताकत हो, वह कल्पना की तरह मानव के साथ व्यवहार नहीं कर पाता है। उसे भी सरस बनने की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, क्योंकि रसहीन खबर का आनंद नहीं मिलता। समाज इसे स्वीकार भी नहीं करता है। इसलिए मीडिया को चमक पैदा करनी पड़ती है।

Scanned with CamScanner

इसी चमक के जरिये मीडिया को अपनी दिशा निर्धारित करनी पड़ती है तथा दर्शक या पाठक की दिलचस्पी समझने में मदद मिलती है। इस मदद के बिना मीडिया आगे नहीं बढ़ पाता है, और जब जनमानस की दिलचस्पी पता चल जाती है, तब मीडिया कल्पना के जरिये उसके पास पहुंचने की कोशिश करता है। इस कोशिश को मीडिया की चमक कहना किसी कोने से गलत नहीं है क्योंकि सम्पर्कहीन-संवादहीन माहौल में एक विकल्प को हर वक्त पैदा करने में मीडिया पूरी तरह सफल रहता है।

यही कारण है कि मीडिया की चमक लाख खामियों के बावजूद जनता की आंखों में बसी है हालांकि दर्शक या पाठक मीडिया की चमक को पसन्द नहीं करते क्योंकि विशुद्ध विलासिता समाज में सदा के लिए स्थायी नहीं हो पाती, वैसे उसने इस व्यवस्था में अपनी एक अलग पहचान बनायी है जो मीडिया की परिचित चमक से काफी दूर है।

मीडिया ने इस कठिन और जटिल समय में जीने के लिए ठोस तर्क पेश किया है। इस तर्क को कोई दरकिनार नहीं कर सकता है। जीने के लिए किरकिरी बनने की जरूरत नहीं होती है। किरकिरी बनने का स्वप्नद्रष्टा किसी कीमत पर आंखों की मणि नहीं बन सकता है। समाज ने हमेशा इस तरह के मणियों को अपनाया है। उन मणियों के विश्लेषण पर सदा जोर दिया गया है। इसे कोई अपकर्म नहीं कह सकता। कहने का यही अभिप्राय है कि मीडिया ने कभी छोटी रेखा या बड़ी रेखा खींचने पर विश्वास नहीं प्रकट किया है।

मीडिया का मकसद है कि आम जनता उन तमाम सूचनाओं से अवगत हो, जिन सूचनाओं को शासक श्रेणी ने आम जनता के लिए उपयोगी समझा

है। यही वह बिन्दु है, जहां डेवलपमेंटल मीडिया की आवश्यकता होती है। पूरे विश्व में इस मीडिया ने एक नया ढांचा तैयार किया है। इस ढांचे पर सूचनात्मक प्रक्रिया को आगे बढ़ने का मौका मिला है। इससे समाज में एक ऐसी व्यवस्था उत्पन्न हुई, जिसे देखकर एक स्वर में समाज कहता है कि चिंतन-जगत में मीडिया ने एक विकल्प स्थापित किया है। इससे समाज को बल मिला है। लेकिन इसे देखकर यह कहना अनुचित होगा कि मीडिया ने सामाजिक आवश्यकताओं की बुनियाद को पूरी तरह से बदल दिया।

मीडिया ने शासकों के कान जरूर खड़े कर दिये हैं, पर उनकी नीतियों को पूरी तरह नहीं बदला है। इसलिए कि मीडिया के सामने एक बेकसूर संदर्भ तलवार की तरह लटक रहा है। इस संदर्भ की हृदयहीनता सर्वविदित है; जिसका कवि कुमारेन्द्र पारसनाथ के शब्दों में इस तरह जिक्र किया जा सकता है— 'जहां/ इतने इतने फौलादी हाथ/ और आला दिमाग/ देश का नक्शा बदलने में लगे हों वहां/ एक गरीबी और आसरे का नक्शा न बदले/' ठीक इसी तरह सब कुछ जानने के बावजूद मीडिया अपनी रूपरेखा चाहकर भी नहीं बदल पाता है; क्योंकि उसे पता है कि 'नक्शा' क्यों नहीं बदलता है?

■ उज्ज्वल छवि

मीडिया इतिहास का प्रहरी बनने जा रहा है। हर क्षण में घटित घटना में सच जीने के लिए आग की तलाश करता है। इतिहास में आज एक ऐसा वक्त आ गया है, जहां आदमी को खुद खड़ा होना पड़ रहा है। इस ओर मीडिया का

Scanned with CamScanner

पूरा ध्यान लगा हुआ है। इतिहास में ऐसे वक्त आने के सम्बन्ध में जनकवि देवी प्रसाद मिश्र ने लिखा है– 'इतिहास में एक ऐसा वक्त आता है जब/ समय के कोनों में पहें/ बेडौल पत्थरों के आदमी/ अपनी रसोई/ अपना घर/ और अपनी आग/ तलाश लेता है।'

यदि कोई घटना घटती है तो मीडिया उसे लपकने की कोशिश करता है। कभी यह देखा जाता है कि लपकने की इस कोशिश में सच गायब हो जाता है। सच के गायब होते ही दायित्व का सवाल उठ खड़ा होता है। इस सवाल के कारण जनता मीडिया से अपना पल्ला झाड़ना चाहती है। जनता में सुगबुगाहट होने से मीडिया के कान खड़े हो जाते हैं। वह तुरन्त अपना पैंतरा बदल लेता है। जनता को साथ लेकर आगे बढ़ने का सिलसिला जारी रखता है। वह किसी कीमत पर इस सिलसिले को नहीं तोड़ता है चाहे उसकी चमक उसके हाथ से क्यों न चली जाय। मीडिया को अच्छी तरह मालूम है कि एक चमक जाने से दूसरी चमक पैदा की जा सकती है, लेकिन जनता का साथ टूटने से फिर उसका साथ पाना मुश्किल है।

आज के दौर में इसी प्रक्रिया के सम्बन्ध में कहा जाता है कि किसी कीमत पर संवाद न टूटे। संवाद को आदि से अंत बनाने की ताकत इसी चमक से पैदा होती है। इसे मीडिया अपना पावरहाउस बनाना चाहता है। इस पावर हाउस पर समाज के विभिन्न तबकों का दबाव बनता है। इस दबाव से उचित व्यवहार कायम करने में मीडिया को सफलता हासिल करनी पड़ती है। इसके बिना वह आगे नहीं बढ़ पाता है। मीडिया इसी बल पर अपनी सार्थकता दर्शक या पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस प्रस्तुतीकरण में समस्याएं उत्पन्न

होती हैं। समस्याएं उत्पन्न होते ही मीडिया उन्हें समाज के विभिन्न हिस्सों में वितरित करने में जुट जाता है।

कुछ मीडियाविदों का कहना है कि मीडिया पूरी तरह से इन समस्याओं का समाधान चालाकी से करता है। चालाकी जरूरी हो जाती है। धूर्तता के बिना चमक पैदा नहीं होती है; इस तरह की बातें भी सामने आती हैं। लेकिन धूर्तता से चमक पैदा नहीं होती यदि चमक पैदा होती भी होगी तो उसमें टिकाऊपन या आकर्षण नहीं होगा। आकर्षण के बिना मीडिया मनोरोग का शिकार हो जाता है। इस बीमारी से बचने के लिए वह समाज के विभिन्न हिस्सों के लोगों से सम्पर्क साधता है।

सम्पर्क साधने में जो अखबार या चैनल जितना आगे रहता है वह उतना तेज होता है। 21वीं सदी की प्रौद्योगिकी प्रगति ने यह सिद्ध कर दिया कि लोग कल्पनाजनित भावों को स्थान नहीं देते। कपोल कल्पित भावना मीडिया के लिए घातक साबित होती है। इस जगत में मध्ययुगीन चेतना कारगर नहीं हो पाती है।

असल सवाल यह है कि मानव सभ्यता के पास एक से एक दर्शन हैं। मानव सभ्यता के विकास का इतिहास महत्वपूर्ण है, सही मायने में हर युग की असलियत को समझने का यह सार्थक प्रयास है। विभिन्न कारणों के चलते मानव सभ्यता को यह पता है कि प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कहां तक जायज है। जिस प्रौद्योगिकी से मानव की दृष्टि समाज को आगे बढ़ाने में कारगर साबित नहीं होती है, उस दृष्टि को समाज तुरन्त खारिज कर देता है। खारिज

Scanned with CamScanner

होते ही वर्चस्व की राजनीति में विश्वास करनेवाले अपनी कल्पना को तर्क में हांकने की कोशिश करते हैं। लेकिन हाथी के झुण्ड में ऊंट तो दूर से नजर आ जाता है।

समाजशास्त्रियों का कहना है कि भूमण्डलीकरण की हवा के कारण मीडिया कल्पना को छोड़कर तर्क पर जोर देता है। तर्क से ही वह चमक पैदा करता है। इसी के चलते वह दर्शक को अपने पास बैठाये रहता है। धीरे-धीरे दर्शक या पाठक के दिलोदिमाग पर हावी हो जाता है। एक समय ऐसा आ जाता है कि वह अपने दर्शक या पाठक को जिस रूप में उठाना चाहे, उठा सकता है, जिस रूप में बैठाना चाहे, बैठा सकता है। इस उठाने-बैठाने के चक्कर में मीडिया परेशान हो जाता है। इस परेशानी के चलते जो करना चाहिए, वह मीडिया नहीं कर पाता है बल्कि मीडिया अनिश्चितता का शिकार हो जाता है। क्या ऐसा ही होता है या मीडिया के सच का कोई दूसरा रंग भी है।

मीडिया को रंग से नफरत है। वह तटस्थता की भूमिका अदा करना चाहता है। ढोलक बजा बजाकर यह प्रचार करता है कि किसी के प्रचार अभियान में उसे शामिल होने की दिलचस्पी नहीं है। उसकी दिलचस्पी समाज में समरसता फैलाने की है, जो किसी एक घटना को प्रचारित-प्रसारित करने से ही संभव है। समाज को जो पसंद नहीं है, उसे भी वह परोसने का प्रयास करता है ताकि जनता को पसंद आ जाय। जनता पर भरोसा करता है; जिसका मकसद पूरी तरह समझ में आता है। इस समझदारी को धूमिल की इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा सकता है— 'बाबूजी! सच कहूं-मेरी निगाह में/ न कोई

छोटा है/ न कोई बड़ा है/ मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है/ जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।'

उसका भरोसा किसी राजनीतिक पार्टी द्वारा जनता पर किये गये भरोसे से अलग है। कहने के लिए कुछ भी कहा जाय, सच तो यही है कि पापी पेट के लिए वह भी काम करता है। कुछ हद तक रोजगार देता है। समाजशास्त्रियों ने यह कहने का प्रयास किया है कि मीडिया उद्योग है। वह चाहे जो करे एक हद तक रोजगार उपलब्ध कराता है। इस पद्धति को अंजाम देने के सिलसिले में वैसे अनेक पड़ावों को पार करना पड़ता है, जिसमें चमक पैदा करना मीडिया का सबसे बड़ा पड़ाव है, क्योंकि इसी के बल पर वह चमकदार होता है। मीडिया अपनी चमक को पैदा करते वक्त यही सोचता है कि जनता के बीच उसकी छवि उज्ज्वल से उज्ज्वलतम हो।

''...आर्थिक पुनर्निर्माण और व्यापारिक बाधाओं को दूर करने के उद्देश्य से पश्चिमी देशों ने मिलकर जिन चार प्रमुख अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं का गठन किया, उनकी व्यापार-नीतियाँ वास्तव में वैश्विक कार्य व्यापार, यानी भूमंडलीय कार्य व्यापार द्वारा सभी को आर्थिक समृद्धि प्रदान नहीं करतीं, बल्कि वे संपन्न और शक्तिशाली देशों के आर्थिक तंत्र में कमजोर देशों को जकड़ती हैं।''[1] ऐसी स्थिति में पत्रकारों की भूमिका का सवाल उठ खड़ा होता है क्योंकि वह चौथा खम्भा है। इस दृष्टि से उसे जनतंत्र, देश और देशवासियों के हित में काम करना चाहिए। इस बारे में 'पत्रकारिता और जनसम्पर्क' नामक

[1] *शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम 2003, पृ. 26*

Scanned with CamScanner

पुस्तक में आलोक कुमार ने ठीक ही लिखा है— ''पत्रकारिता इस दायित्व वहन में कितनी ईमानदार है; यह चर्चा का विषय हो सकता है। परन्तु पत्रकारों और बुद्धिजीवियों का यह दायित्व है कि वे प्रेस को लोक-मंगल की दिशा में प्रेरित करें ताकि शांति की स्थापना हो सके।'[2]

यह सच है कि अंग्रेजी की एजेंसियों से खबर आती हैं, उन्हीं खबरों का हिन्दी में अनुवाद किया जाता है। अनुवाद भी ठीक नहीं होता है। इसके बावजूद रेडियो, टेलीविजन ने इस जगत को एक नया आयाम दिया है। इसकी व्याख्या उन्होंने इस तरह प्रस्तुत की है— ''रेडियो, टेलीविजन ने पत्रकारिता के क्षेत्र को नए आयाम दिए हैं और इस प्रकार पत्रकारिता की चुनौतियां बढ़ ही रही हैं। पत्रकार का काम घटिया काम के प्रति उदासीनता के विरुद्ध संघर्ष करना है। इस संघर्ष में सबसे कारगर अस्त्र पत्रकार का स्वयं अपने कार्य के प्रति दायित्व की भावना है।'[3] समय बदला है। पत्रकार अपने दायित्व के प्रति सजग हुए है। इस दायित्व की भावना को और बढ़ाने की आवश्यकता है। इसी से वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना किया जा सकता है। हिन्दी पत्रकारिता के पत्रकारों ने यह काम किया है। उनके सामने भयानक परिस्थितियां हैं। उन परिस्थितियों का उन्होंने सामना किया है। हिन्दी पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया है। इसमें संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। पत्रकारों ने लम्बे संघर्ष के जरिये निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश की है, जैसाकि कुमुद शर्मा

2 *कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 102*

3 *कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 103*

ने लिखा है— ''भूमंडलीय अध्ययन और विमर्श के दौर में भूमंडलीकरण के स्वभाव और चरित्र का विश्लेषण करने के लिए प्रायः वैचारिक, सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलुओं को दृष्टि में रखकर निष्कर्ष तक पहुंचाने का प्रयत्न किया जाता है।'[4] निष्कर्ष तक पहुंचने में पत्रकारों को अपने कर्तव्य का पालन करना पड़ता है।

इस कर्तव्य पालन में इन्हें विभिन्न समस्याओं का मुकाबला करना पड़ता है तथा अपनी जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। इस बारे में आलोक कुमार ने ठीक ही कहा है— '' रिपोर्टर को चाहिए कि वह हर समय जागरूक रहे। बटोरे गए तथ्यों की ठीक से जांच-पड़ताल कर ले ताकि रिपोर्टर की विश्वसनीयता पर कोई प्रश्न-चिह्न न लगे। जिस स्रोत से रिपोर्टर कोई सूचना प्राप्त करता है उसके हितों की रक्षा करना उसका सर्वोपरि दायित्व है। भले ही जेल जाना पड़े पर सूचना-स्रोत की गोपनीयता बनाए रखना रिपोर्टर की अहम् जिम्मेदारी है।'[5] लेकिन पत्रकारों के समक्ष एक नयी परिस्थिति पैदा हुई है। खासकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के चलते नागरिक को उपभोक्ता बनना पड़ा है।

इस बारे में कुमुद शर्मा ने लिखा है—''बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में 'मनुष्य को नागरिक नहीं उपभोक्ता समझा' और माल बेचने की रणनीति में उपभोक्ता को नहीं,अपने व्यापारिक हित को

4 *शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 28*

5 *कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.105*

Scanned with CamScanner

सर्वोपरि माना। व्यापारिक रणनीति के लिए उन्होंने विज्ञापन उद्योग का सहारा लिया।'[6] विज्ञापन उद्योग के चलते आगे बढ़ना मुश्किल हो रहा है। ऐसा लगता है कि इससे समस्याएं और गंभीर हो गयी हैं।

जिस पत्रकारिता को जनता की अंतिम आशा कहा जाता था, आज उसके सामने संकट है। जैसाकि आलोक ने लिखा है—''रिपोर्टर को यह ज्ञात होना चाहिए कि पत्रकारिता आम जनता के लिए शिकायतों के निपटान के प्रति एक अंतिम आशा है। यदि इस आशा पर भी तुषारापात हो गया तो समाज दिशाहीन हो जाएगा। इसी आशा को बलवती बनाने के लिए पायनियर के पत्रकार रुडयार्ड किपलिंग ने रिपोर्टर जगत को छह ककार दिए हैं।'[7] प्रशिक्षण प्राप्त करने से पत्रकारों की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। किसी घटना की जांच-पड़ताल करने में सहायता मिलती है। खतरों का सामना करना आसान हो जाता है। इस बारे में आलोक ने लिखा है— ''तथ्यों की विवेकशीलता के साथ जांच-पड़ताल करने से रिपोर्टर की विश्वसनीयता पर कोई आंच नहीं आती और जब वह ठीक से तथ्यों की जांच-पड़ताल नहीं करता तो रिपोर्टर को खतरों के रू-ब-रू भी होना पड़ सकता है।'[8] लेकिन जो समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, वे समस्याएं अत्यन्त भयावह हैं।

6 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 29

7 कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 106

8 कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 107

भूमण्डलीय वातावरण ने आर्थिक संकट को बढ़ाया है। इस बारे में कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''भूमंडलीय, उदारीकरण से जन्मी वैश्विक अर्थव्यवस्था ने 'बाजारवादी' उपभोक्तावादी दंश फैलाया। आशानुरूप समृद्धि नहीं बढ़ी। हाँ बेरोजगारी और गरीबी बढ़ गई। साम्राज्यवादी शोषण पर आधारित इस भूमंडलीय उदारीकरण के चलते विकासशील देशों को आर्थिक संकट से मुक्ति नहीं मिल सकी, बल्कि वह अन्य किस्म के आर्थिक संकटों में फंस गए।'[9]

विकासशील देशों को आर्थिक मुक्ति से बाहर निकालने के लिए सूचना से लैस करना आवश्यक है। इसके लिए पत्रकारों को सूचना स्रोत की पूरी रक्षा करनी होगी। यह पत्रकारों की जिम्मेदारी है, इस बारे में आलोक ने लिखा है— ''रिपोर्टर को चाहिए कि वह अपने सूचना स्रोत की हर स्थिति में पूर्ण सुरक्षा करे। जिज्ञासा से ही रिपोर्टिंग का काम शुरू होता है जो देख नहीं सकता था? पूरी तरह सुन नहीं सकता। एक अंधा व्यक्ति भी जानने की जिज्ञासा से गहरे रूप से जुड़ा होता है।'[10] मीडिया को यही काम करना पड़ता है। इस काम को अंजाम दिये बिना रिपोर्टिंग का काम पूरा नहीं हो पाता है। जैसाकि आलोक ने लिखा है— ''मीडिया सूचना देने की अपनी स्वाभाविक प्रकृति

9 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 31

10 कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 108

Scanned with CamScanner

के अनुकूल कुछ भी छाप देने या प्रसारण करने के लिए बाध्य नहीं होता।'"[11] लेकिन उसके लिए एक माहौल जरूरी है। इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने बताया है कि ''जब रिपोर्टर अपने रचनाकर्म को इन मानवीय मूल्यों के साथ जोड़े रखता है तो किसी भी विधा को लेकर अपने कार्य में जुड़ा पत्रकार बेहतर कार्य कर सकता है। राष्ट्र प्रेम और मानव प्रेम खेल, आध्यात्मिक विज्ञान, विधि, खोजी पत्रकारिता से संबद्ध हर तरह की पत्रकारिता की रिपोर्टिंग विधा के लिए हवा-पानी की तरह अनिवार्य होने ही चाहिए।'"[12]

परिवर्तन की दिशा को समझे बिना आगे हस्तक्षेप भी बंद हो जाता है। इससे पाठकों से सीधा सम्पर्क स्थापित करना होगा। इस बारे में आलोक का विचार उपयुक्त जान पड़ता है। जैसाकि उन्होंने लिखा है— ''समाज परिवर्तनशील है। समाज के मूल्य बनते और बिगड़ते रहते हैं किन्तु पत्रकारिता के उच्च मूल्य कभी बदलने नहीं चाहिए। पत्रकारिता के मूल्यों की छवि धूमिल नहीं होनी चाहिए। बदलते मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देश के राजनीतिज्ञों के पास देश को दिशा देने की क्षमता का भले ही अभाव दिखे किन्तु पत्रकारों को अपने दायित्वों से कभी मुख नहीं मोड़ना चाहिए। पत्रकारों के विचारों में जिनका संप्रेषण भले ही पत्रकार ने समाचार के माध्यम से किया हो, चाहे सम्पादकीय के माध्यम से, पत्रकार द्वारा संप्रेषित विचारों में शुचिता, पवित्रता, सत्यता और

[11] *कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 109*

[12] *कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.109*

अमृत के सदृश मिठास तो होनी ही चाहिए तभी उसका पाठक प्रभावित होगा और पाठक का दिल-दिमाग सही दिशा में कार्य कर सकेगा।'"[13]

लेकिन जो वातावरण तैयार हो गया है, वहां जनता की लामबंदी जरूरी है, क्योंकि विकासमान देशों को गुलाम बनाया जाता है। इस बारे में कुमुद शर्मा का कहना है— ''...भूमंडलीय उदारीकरण विकासशील देशों के पूर्ण निजीकरण का लक्ष्य लेकर आया है। उदारीकरण की यह नीति विकासशील देशों को आर्थिक रूप से विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों का गुलाम बनाती है।'"[14] इस उलझन को दूर करने के लिए भाषा के मिजाज से परिचित होना आवश्यक है। भाषा के मिजाज को समझना कठिन हुआ है। भाषा की प्रकृति से आम पत्रकार वाकिफ नहीं होते हैं, लेकिन इसके बिना नये शब्द बनाये भी नहीं जा सकते हैं। नये शब्द और उनके अर्थ के बीच सम्बन्ध भी होना चाहिए। यदि यह सम्बन्ध नहीं रहेगा तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा। इससे एक चमत्कार पैदा हो सकता है। चमत्कार से आस्था टूट जायेगी। क्योंकि चमत्कार का रहस्य तुरंत पता चल जाता है।

इसलिए पत्रकार को भाषा के प्रयोग पर अधिक ध्यान देना चाहिए। जैसाकि कुमुद शर्मा का कहना है— ''इलेक्ट्रानिक मीडिया में बोल-चाल की भाषा अपनाते समय व्याकरण के नियमों की परवाह नहीं की जाती है जो

[13] *कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 88*

[14] *शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 32*

Scanned with CamScanner

निश्चय ही चिंतनीय है। इन माध्यमों में भाषा के मूल चरित्र की रक्षा करते हुए इक्कीसवीं सदी में नए शब्दों के गढ़ने जैसा प्रशंसनीय कार्य तो करना चाहिए, लेकिन यह प्रयोग वही कर सकता है जो भाषाविद् हो और जिसे भाषा के मूल चरित्र की अच्छी जानकारी हो। भाषा और वर्तनी पर अधिकार रखने वाले सजग पत्रकार ही प्रयोग कर सकते हैं।'[15] इस प्रयोग के बिना उपनिवेशवाद के चरित्र को समझना दुरुह है। कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''उपनिवेशवाद भूमंडलीकरण के चरित्र का अभिन्न अंग है। शक्तिशाली और संपन्न देशों के बाजारों की संतृप्ति के बाद उदारीकरण के मार्ग से शक्तिशाली राष्ट्रों ने विकासशील देशों में अपनी घुसपैठ बढ़ाई।'[16]

इस सच को आगे नहीं बढ़ाया गया। बल्कि संरक्षणवाद को प्रोत्साहित किया गया। इस प्रोत्साहन से काफी नुकसान पहुंचा है। नीति निर्धारकों की अपनी मंशा थी। इस पर रोशनी डालते हुए कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''अपनी संरक्षणवादी नीति के चलते भारत ने अपना ध्यान घरेलू उद्योगों पर केन्द्रित किया। विदेशी उत्पादों के आयात पर भारी कर लगाकर इसने अपने घरेलू उद्योगों को प्रभावी संरक्षण प्रदान किया। उसे फूलने-फलने का पूर्ण अवसर दिया। संरक्षणवाद को प्रोत्साहित करने के पीछे नीति निर्धारक कई उद्देश्यों से

15 *शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 33*

16 *शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 58*

प्रेरित थे।'[17] यह सही है कि मुख्यधारा की पत्रकारिता में ऐसी धांधली नहीं चलती है। यह एक तरह से पत्रकारिता है भी नहीं। वैसे इसका विश्लेषण अलग किस्म से किया जाता है।

कहा जाता है कि आर्थिक समस्याओं के चलते ऐसा करना पड़ता है। उस पर रोशनी डालते हुए कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''भारतीय अर्थतंत्र के नीति-निर्माताओं को दो आशंकाएँ हमेशा घेरे रहीं। पहली यह कि देश को स्थायी तौर पर विदेशी मुद्रा की कमी का सामना करना पड़ सकता है। दूसरी यह कि नवोदित घरेलू उद्योगों को विदेशी व्यापार की प्रतिस्पर्धा से बचाकर नहीं रखा जाएगा तो उसका पनपना संभव नहीं है।'[18] इस बहस को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने लिखा है— ''आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण भूमंडलीकरण के ही संप्रत्यय हैं। देश के आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक दबाव के चलते भूमंडलीकरण को अनिवार्य मान लिया गया। ऐसी 'विकल्पहीन' स्थिति हमारी 'नियति' बना दी गई। मीडिया भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का सशक्त वाहक हो सकता था।'[19]

17 *शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 58*

18 *शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 67*

19 *शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 67*

Scanned with CamScanner

वास्तविकता को समझने के लिए बदलाव की जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। बदलाव के स्तर को समझना पड़ता है। बदलाव किस तरह हुआ है। इसका जिक्र करते हुए कुमुद शर्मा का कहना है— ''भूमंडलीय परिवेश ने केवल इलेक्ट्रानिक मीडिया के परिदृश्य में ही आश्चर्यजनक बदलाव पैदा नहीं किए, बल्कि इसने प्रिंट मीडिया के परिदृश्य को भी बदला।'[20] इस पर प्रौद्योगिकी का भी प्रभाव पड़ा है।

इस प्रभाव को रेखांकित करते हुए कुमुद शर्मा ने तकनीकी बदलाव की ओर ध्यान खींचा है। यथा — ''उच्च प्रौद्योगिकी के युग में संचार क्रांति ने संचार माध्यमों के बहुआयामी स्वरूप को उपस्थित कर परम्परागत संचार माध्यमों को पृष्ठभूमि में धकेलकर उनके स्थान पर 'हाइटेक' और 'सुपर स्पीड' वाले संचार माध्यमों को स्थापित कर दिया है। इन संचार माध्यमों से विश्व में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को गति मिली है। उच्च प्रौद्योगिकी ने इलेक्ट्रानिक मीडिया यानी रेडियो-टी. वी. के इलेक्ट्रानिक संजाल को बदला है। तकनीकी दृष्टि से इनमें काफी बदलाव आया है।'[21] विभिन्न माध्यमों के आने से विश्व-संस्कृति का प्रचलन शुरू हुआ। इस प्रचलन के संदर्भ में विचारवानों ने अपने-अपने ढंग से विचार व्यक्त किया है। कुमुद शर्मा का कहना है— ''भूमण्डलीकरण के इस दौर में उच्च प्रौद्योगिकी ने टेलीविजन के छोटे से परदे पर अपनी अद्भुत

[20] शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 68

[21] शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 69

करामात दिखायी है। कृत्रिम उपग्रहों के आविष्कार ने भूमण्डलीय मीडिया के प्रवेश से अनेक चैनलों के सम्मिलित रूप दूरदर्शन की दुनिया को बदल दिया है। 'विश्वग्राम' की परिकल्पना को अंतरिक्ष में मौजूद 'सैटेलाइट' साकार करने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। मनुष्य विश्व संस्कृति से एकाकार हो रहा है।'[22] इस संस्कृति का अपना मायालोक है। इस लोक की भाषिका भी अपनी है।

इसका शिक्षा शास्त्र भी अपना है। इस बारे में कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''भूमण्डलीय मीडिया का अपना शिक्षाशास्त्र है, जो किसी लोकशिक्षण परम्परा से नहीं जुड़ता है। वह जुड़ता है बाजारवाद के सिद्धांतों और नियमों से। इसीलिए समाचारों के बीच भी 'एक छोटा सा विराम' 'आफ्टर द ब्रेक' या 'छोटे से ब्रेक के बाद' कहकर वह उपभोक्ता वस्तुओं का लुभावना प्रदर्शन करता है।'[23] बाजारवाद की एकांगिता का मूल्यांकन भारत में होना जरूरी है। इसके लिए जो मानदण्ड तैयार किये गये हैं, वे मानदण्ड पर्याप्त नहीं हैं। विकासमान देशों ने वैश्वीकरण को सहजता के रूप में नहीं लिया है, क्योंकि इस आर्थिक नीति के कारण पूरे समाज का विकास नहीं हो पाता है। एक खास तबके का विकास होता है।

पूंजी का उग्र रूप देखने को मिलता है। इस उग्र रूप को देखना विकासमान देशों के लिए अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि पूंजीवाद का विकास

[22] शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. [illegible]

[23] शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. [illegible]

Scanned with CamScanner

इसी तरह होता है। ऐसी स्थिति में भारतीय मीडिया यदि वर्चस्ववादी सिद्धांत को आगे बढ़ाने का काम करता है, तो क्या आश्चर्य है। इस ओर कुमुद शर्मा ने लिखा है—''बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से निर्देशित इलेक्ट्रानिक मीडिया संप्रेषण की 'जादुई गोली' के सिद्धांत से श्रोताओं और दर्शकों की सोचने-समझने की शक्ति का हनन कर रहा है। टी. वी. का अनुकरण करती पीढ़ी चकाचौंधीकरण के हर गुण सीख रही है। व्यावहारिक जीवन में बड़ी तत्परता से वह उन्हें उतार भी रही है। इस तरह भारतीय मीडिया भूमण्डलीय मीडिया के वर्चस्व के कारण अप्रत्यक्ष रूप से औपनिवेशिक समर्थित शिक्षा का साधन बन गया, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का हितसाधन बन बैठा।'[24]

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हस्तक्षेप बढ़ने से निरपेक्षता समाप्त हो जाती है। इस बारे में लिखना उस रूप से शुरू हुआ कि सब कुछ ठीकठाक चल रहा है। सवाल यह है कि गलत चीजों का विरोध नहीं किया जाता है। भयानक संकट है, जिस ओर आलोक ने ध्यान खींचा है— ''संपादकीय लिखते समय संपादक को निरपेक्ष होना बहुत जरूरी है, किसी प्रकार का पक्षपात पाप है। संपादकीय कार्यालय में आए ढेर सारे पत्रों के माध्यम से प्राप्त सुझावों व शिकायतों को संपादकीय पृष्ठ में स्वर दिया जा सकता है।'[25] आलोक ने पत्रकारिता के प्रभाव विस्तार के संदर्भ में इस तरह लिखा है पत्रकारिता का प्रभावक्षेत्र इतना विस्तृत हो गया है कि समाचार एवं पत्र-पत्रिकाएं राष्ट्रीय समस्याओं के प्रवक्ता

24 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, नयी दिल्ली, पृ. 99

25 कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 99

के रूप में जानी जाने लगी हैं। रेडियो, दूरदर्शन और समाचारपत्रों के बिना आज हमारा जीवन इतना नीरस एवं एकाकी हो जाएगा, इसकी हमने कल्पना भी नहीं की थी। आज पत्रकारिता नागरिक अधिकारों की रक्षक एवं संरक्षक होने के साथ-साथ वकालत भी करने लगी है। मीडिया के कुछ आलोचकों ने मीडिया के कार्यों को निर्धारित करने पर जोर दिया है।

हर बीमारी का इलाज उनके अनुसार मीडिया प्रस्तुत कर सकता है। भूमण्डलीय मीडिया के क्रियाकलापों पर टिप्पणी करते हुए कुमुद शर्मा ने लिखा है—''मीडिया को चाहिए कि वह राष्ट्रीय संस्कारों को जगाए; मानवीय मूल्यों के रूप में राष्ट्रीय संस्कारों के ग्रहण की शिक्षा दे; व्यक्ति को राष्ट्रीय आचरण सिखाए; अपने राष्ट्र की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थितियों के प्रति उसमें सकारात्मक सोच पैदा करे। तभी वह शिक्षक के अपने आदर्श को पूरा कर सकता है; भूमण्डलीय मीडिया के साम्राज्यवादी, वर्चस्ववादी स्वरूप के जाल को काट सकता है, अन्यथा भूमण्डलीय मीडिया साम्राज्यवादी और प्रभुत्ववादी स्वरूप को स्थापित करते हुए औपनिवेशिक शिक्षातंत्र में हमें ग्रस लेगा।'[26]

आज समाज में शांति स्थापित करना एक कठिन कार्य हो गया है। मीडिया इस ओर ध्यान क्यों नहीं देता है। इस पर ध्यान जरूरी है। इसके बारे में आलोक ने लिखा है— ''हिंसा का तांडव पूरे विश्व में व्याप्त है, दूसरी ओर शांति के लिए शिखर वार्ताएं चल रही हैं, इसके बावजूद शांति कोसों दूर ही जान पड़ती

26 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 80

Scanned with CamScanner

है। विज्ञान में हुई अभूतपूर्व प्रगति के कारण पूरा विश्व बहुत छोटा हो गया है। विज्ञान ने तमाम भौतिक अवरोधों को समाप्त तो कर दिया है किन्तु इससे शांति प्राप्ति की समस्या ने भी उग्र रूप धारण कर लिया है।''[27] इसकी जांच करने के लिए सम्पादकीय पृष्ठ को देखना आवश्यक है क्योंकि उससे नीति, विचार, व्यक्तित्व को समझा जा सकता है। जैसाकि आलोक ने लिखा है— ''किसी भी समाचारपत्र एवं पत्रिका की रीढ़ होता है— सम्पादकीय। सम्पादकीय पृष्ठ को पढ़ कर सम्पादक के व्यक्तित्व की गुरुगरिमा का भी पता चलता है और वह समाचारपत्र के विचारों और नीति का भी संवाहक होता है।'[28] इस नीति को देखने से पता चलेगा कि अधिकांश मीडिया साम्राज्यवादियों द्वारा स्थापित समाचार एजेंसियों पर जीवित है।

इस तरह के मीडिया के लिए ये एजेंसियां हिमालय की बर्फ हैं। यदि पहाड़ पर बर्फ नहीं पिघलेगी तो नदी में पानी नहीं आयेगा। अधिकांश मीडिया की भी ऐसी स्थिति हो जाती है। यदि साम्राज्यवादी समाचार एजेंसियां खबर न दें, तो खबर ही नहीं बनेगी। अपने आसपास की घटना को ऐसा मीडिया समाचार नहीं मानता है। इसके कई कारण हो सकते हैं, उन कारणों में एक कारण सूचनाओं की बाढ़ भी है। इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''भारतीय मीडिया सूचनाओं के लिए साम्राज्यवादी देशों का मुखापेक्षी है। इसी का लाभ उठाकर अंतरराष्ट्रीय चैनल साम्राज्यवादी

27 कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 101

28 कुमार आलोक, पत्रकारिता और जनसम्पर्क, संस्करण : 2004, अनामिका प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 98

सूचना-जाल बिछाकर भारतीय उपभोक्ताओं को वशीभूत करने में सफल हुए हैं।'[29] इस आर्थिक पत्रकारिता को जनाकांक्षाओं से जोड़ने का भी सिलसिला आरंभ हुआ है। इस बारे में कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''उसने भी जनाकांक्षाओं की जगह आर्थिक संसाधनों को प्राथमिकता दी है। इसलिए कार्यक्रम की लोकप्रियता के लिए स्थापित मानदण्डों की टूट-फूट वहां भी स्पष्ट दिखायी पड़ रही है। इस तरह सूचना क्रांति से भारतीय इलेक्ट्रानिक मीडिया के भूमण्डलीय परिदृश्य में हमारी अपनी पहचान के खोने का खतरा पैदा हो गया है। जातीय अस्मिता के धुंधलाने का भय भारतीय मन में समाने लगा है।'[30]

आज के दौर में यह देखा जाता है कि जब-जब खबर और विज्ञापन की बातें आती हैं, तब-तब एक प्रतियोगिता का सवाल सामने उठने लगता है। ऐसा लगता है कि दर्शकों को खबर चाहिए जबकि मीडिया मालिकों को मुनाफा चाहिए। लेकिन खबर और मुनाफे में सम्बन्ध है। जिन पण्यों के विज्ञापन दिखाये जाते हैं, उन पण्यों के मालिकों के लिए इस तरह के विज्ञापन एक तरह से खबर हैं। एक साथ दोनों काम करने की गारंटी सूचना के जरिये अंजाम देने की कोशिश की जाती है।

29 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 87

30 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 89

Scanned with CamScanner

इस कोशिश को राष्ट्रीय हित में लगाने की आवश्यकता पर रोशनी डालते हुए कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''सूचना तकनीकी के वैशिष्ट्य का डंका पीटते हुए सूचना-क्रांति से फूटता जो साम्राज्यवादी सूचना प्रवाह भारत में आ रहा है, उसे नियंत्रित करने की जरूरत है। भारतीय इलेक्ट्रानिक मीडिया को राष्ट्रीय हित में, संविधान के हित में उपग्रह चैनल से जारी सूचना प्रवाह को अपने देश की स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में बराबर विश्लेषित करते रहने की जिम्मेदारी उठानी चाहिए।''[31]

विज्ञापन उद्योग पर पड़ रहे प्रभाव का जिक्र करते हुए कुमुद शर्मा का कहना है— ''भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया और उदारीकरण का सीधा असर भारतीय विज्ञापन उद्योग पर पड़ा है। माध्यमों और सूचनाओं के विश्वव्यापीकरण के दौर में विज्ञापन उद्योग भी विश्वव्यापी प्रसार और स्थानीय शक्ति से सम्पन्न होने की कोशिश कर रहा है। जीवन बीमा निगम, दूरसंचार, इलेक्ट्रानिक मीडिया, उपभोक्ता वस्तुओं और परिवहन के क्षेत्र में विभिन्न बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत में पैर जमाने की कोशिश में जुटी हैं।''[32] अपने कार्यों के प्रति प्रतिबद्धता की वकालत करते हुए उपभोक्ता संस्कृति के सम्बन्ध में कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''मीडिया में विज्ञापन की सत्ता आज सर्वसम्मति से स्वीकार की जा रही है। इलेक्ट्रानिक मीडिया आज जनसंचार माध्यमों की नीतियों और 'आचार संहिता' को पूरी तरह विस्मृत कर 'विज्ञापन उद्योग' के वशीभूत होकर उपभोक्ता संस्कृति का संवाहक बनकर उभर रहा है।''[33]

21वीं सदी में बाजार को किस रूप में देखा जा रहा है? यह भी एक विचारणीय सवाल है। इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के कारण मौजूदा दौर में राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विज्ञापन के माध्यम से अपने उत्पादों की श्रेष्ठता, उपादेयता सिद्ध कर बाजार पर कब्जा करने का सुनियोजित अभियान चला रही है।''[34]

यदि सम्पादक की भूमिका थोड़ी इधर उधर होती है तो समस्या बढ़ जाती है, जैसाकि कुमुद शर्मा ने लिखा है— ''आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विज्ञापन के जरिए अपना बाजार बढ़ाकर तीसरे विश्व के देशों के बाजारों से स्थानीय उत्पादों को समाप्त करती जा रही हैं। यह 'विज्ञापन' का ही कमाल है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने बाजार पर अपनी मजबूत पकड़ बना ली है और स्थानीय बाजारों को बेरोजगारी तथा मंदी की ओर धकेल दिया है।''[35] इस मंदी से बचने के लिए हमारे पास क्या उपाय है, जहां बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियां खत्म होने के कगार पर पहुंच गयी हैं, वहां यदि कोई कहता है

31 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 90

32 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, 2003, पृ. 92

33 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, [illegible], पृ. [illegible]

34 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, [illegible], पृ. [illegible]

35 शर्मा कुमुद, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रंथ अकादमी, 1659 पुराना दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, संस्करण : प्रथम, [illegible], पृ. [illegible]

कि मंदी का प्रभाव मेरे ऊपर नहीं पड़ा तो यही समझना चाहिए कि विश्व परिस्थिति के उतार-चढ़ाव से वह व्यक्ति बेफिक्र है।

मंदी विश्वव्यापी है। इसके पीछे असंख्य कारण हैं; लेकिन एक कारण प्रमुख है और वह है— साम्राज्यवादी ताकतों की विश्व-हड़प नीति। इस हड़प नीति से दुनिया के विकासमान देशों को बचाना एक अनिवार्य कार्य है। पत्रकारों के सामने यह सबसे बड़ी चुनौती है। पत्रकार इन चुनौतियों को स्वीकार कर रहे हैं। यह एक अलग सवाल है कि मुकाबला करने की प्रक्रिया की गुणवत्ता कैसी है, क्योंकि गुणवत्ता के बिना किसी लेखनी की सार्थकता सामने नहीं आती है।

लोकतंत्र के समक्ष विमर्श का तूफान

लोकतंत्र पर हमला करने के लिए विमर्श का तूफान खड़ा किया जाता है। इसके चलते आम जनता के सामने संकट पैदा होता है। इस संकट को दूर करने के लिए जनहितैषी नीतियों को लागू करना जरूरी है।

देश में जनहितैषी नीतियों को लागू करने के लिए उन तमाम उपादानों को समाज में मीडिया उपस्थित करता है जिन उपादानों के जरिये बहस को रोशनी मिलती है। इस रोशनी को वर्तमान संदर्भ में और तेज करने की जरूरत है। मीडिया को राजनीतिक उपकरण के रूप में इस्तेमाल 'करने' या 'होने' से बचाने के लिए देशप्रेमियों-जनतंत्रपसंद लोगों को आगे आना होगा। उनके आगे बढ़ने से देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

मीडिया हक की लड़ाई को यदि आगे बढ़ाता है, तो भ्रष्टाचार खुद ही समाप्त हो जायेगा, और उसे सदाचार का उपदेश सुनने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मरेगा-नरेगा जैसे कार्यक्रमों में हक मारा जाता है। खासकर पंचायती व्यवस्था के जरिये गरीब ग्रामीणों को हक मिलना शुरू हुआ, लेकिन उसे

Scanned with CamScanner